पूर्वमध्यकालीन साहित्य में वर्णित प्रसाधक द्रव्य

डॉ0 सुनीता यादव*

अपने व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाने और सौन्दर्य में अभिवृद्धि के लिए विभिन्न प्रकार के वस्त्राभूषणों के साथ ही प्रसाधनों का प्रयोग मानव प्राचीन काल से करता चला आ रहा है। वास्तविक अर्थों में नैसर्गिक सौन्दर्य में स्थायित्व लाने एवं उसे द्विगुणित करने के लिए प्रसाधनों का प्रयोग स्त्री–पुरूष दोनों के ही द्वारा किया जाता रहा है। साहित्यिक एवं पुरातात्विक स्त्रोतों से भी इसकी पुष्टि होती है। सिन्धु सभ्यता के विभिन्न स्थलों पर हुए उत्खननों से प्राप्त अंजन शालाकाओं, अंजन पात्रों से प्रसाधन के प्रति तत्कालीन निवासियों की सजगता एवं उत्साह का सहज अनुमान लगाया जा सकता है।[1] साहित्य में भी प्रसाधनों के विविध पक्षों, उनके प्रकार, प्रयोग, महत्व, उपयोगिता एवं निर्माण में प्रयुक्त सामग्रियों के विस्तष्त उल्लेख प्राप्त होते है।

उल्लेखनीय है कि भारतीय भारत में ही नहीं अपितु विदेशो में भी अत्यधिक लोकप्रिय था। मिस्त्र, रोम, यूनान आदि देशों में विभिन्न प्रकार के सुगन्धित द्रव्य एवं प्रसाधन सामग्री आदि भारत से निर्यात की जाती थी। भारतीय प्रसाधन सामग्री रोमन स्त्रियों में अत्यधिक लोकप्रिय थे। इसको रोकनें के लिए रोम के सीनेट को भारतीय वस्तुओं पर प्रतिबन्ध लगाना पड़ा।[2] स्पष्ट रूप से यह भारतीय प्रसाधनों की श्रेष्ठता का सूचक था, क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विकास का सर्वाधिक प्रभाव किसी भी देश की उत्पादन व्यवस्था पर देखा जाता है जहाँ वस्तुओं की गुणवत्ता अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप होने के कारण बाजार में लोकप्रिय हो जाती है।

संभवतः यही कारण था कि भारत से रोमन को निर्यात की जाने वाली वस्तुओं की सूची में नलद (जटामांसी) का तेल एवं कूठ, लवंग, गुग्गुल, तिल का तेल, चन्दन की लकड़ी, जायफल, कर्पूर, कक्कोल आदि प्रमुख रूप से सम्मिलित थे।[3] पूर्वमध्यकालीन साहित्य में प्रसाधक द्रव्यों का विस्तष्त संदर्भ प्राप्त होता है।

दन्तधावन

सौन्दर्य की दर्षष्टि से ही नहीं अपितु स्वास्थ्य की दर्षष्टि से भी दन्तधावन का प्रसाधनों में महत्वपूर्ण स्थान था। कामसूत्र[4] में उल्लेख है कि नागरिक प्रायः ब्रह्म–मुहुर्त में शय्या त्यागने के बाद नित्य कर्म के पश्चात् दन्त धावन करते थे। आयुर्वेद में भी दाँतों की स्वच्छता, निरोगता, मांगल्य और सौन्दर्य हेतु यह एक अनिवार्य एवं आवश्यक कर्म बताया गया है। साहित्य में दाँतों की स्वच्छता के लिए दन्तकाष्ठ एवं चूर्ण या दन्तमंजन के प्रयोग के उल्लेख प्राप्त है।

असिस्टेन्ट प्रोफेसर प्रा0 भा0 इति0 सं0 एवं पुरातत्व विभाग आर्य महिला पी0जी0 कॉलेज, वाराणसी

दन्तकाष्ठ

दातुन या दन्तकाष्ठ बनाने की विधि एवं सामग्री का वष्हत्संहिता[5] में विस्तार से उल्लेख किया गया है। इसके अनुसार हरड़ के चूर्ण से युक्त गोमुत्र में सात दिन तक दन्तकाष्ठों को भिगो दें। सात दिनों के पश्चात् दन्तकाष्ठ को उसमें से निकालकर गन्धोदक में डालें। गन्धोदक बनाने के लिए इलायची, दालचीनी, गन्धपत्र, सौवीर, शहद, कालीमिर्च, नागकेसर, कूठ को समभाग में लेकर जल में मिलायें तत्पश्चात् इस गन्धोदक (सुगन्धित जल) में दन्तकाष्ठ को कुछ समय के लिए भिगोयें। तदन्तर चार भाग जायफल, दोभाग गन्धपत्र, एक भगा इलायची और तीन भाग कपूर लेकर इनका चूर्ण बनाये। इस चूर्ण में दन्त काष्ठों को लपेटकर धूप में सुखा लें। इस प्रकार तैयार दातून दाँतों और मुख के लिए उत्तम माना गया है।

दन्त मंजन

दन्तकाष्टों के अतिरिक्त दन्तमंजन[6] का भी प्रयोग किया जाता था। इसके लिए मुख्य रूप से तेजवती के चूर्ण का प्रयोग किया जाता था। इस चूर्ण में मधु, सोंठ, मरिच, पिप्पली, दालचीनी, इलायची, तेजपात, कुट तैल एवं सैन्धव नमक पीसकर मिलाया जाता था।

अभ्यंग (सुगन्धित तैल)

अभ्यंग अर्थात् तेल–मालिश स्नान के पूर्व की जाती थी। इस मालिश से शरीर न सिर्फ कांतिमय हो जाता था अपितु शरीर में रक्त संचार भी सुचारू रूप से होता था। अभ्यंग के लिए विभिन्न प्रकार के तैलों का वर्णन साहित्य में हुआ है। इसमें मुख्य घटक के रूप में तिल के तैल का प्रयोग किया गया हैं। तिल के तैल में विभिन्न औषधियों एवं पुष्पों के प्रयोग से सुगन्धित तैल तैयार किया जाता था। वृहत्संहिता[7] में वर्णन है कि मजिष्ठा, व्याघ्र नख, शुक्ति, दालचीनी, कुष्ठ और बोल के समभाग चूर्ण को तिल के तैल में मिलाकर धूप में तपाये तो उस तेल में चम्पक पुष्प की गंध आ जाती है। इन सुगन्धित तैलों का प्रयोग मात्र अभ्यंग तक ही सीमित न था अपितु इनका प्रयोग केशों में भी किया जाता था। अग्नि पुराण[8] में कमलगंधी, बकुलगंधी, अतिमुक्ता गंधी, जातीपुष्पगंधी आदि अनेक सुवासित तैल बनाने के येाग प्रस्तुत किये गये है। इन तैलों का प्रयोग केशों को सुवासित स्वस्थ बनाने के लिए किया जाता था। अनंगरंग के अनुसार आयुर्वेदीय पद्धति से तिलों के तैल को निर्गन्ध करके उसमें पहले विल्व–पत्र डालकर धूप में सुखायें फिर उनको निकालकर क्रमशः मरूबक या नींबू के पत्ते डालकर उसी प्रकार रख दें। सूखने पर अशोक के फूल, उसके बाद केवड़े के फूल डालें। अन्त में महीन वस्त्र से छानकर रख लें यह महापरिमल तैल उत्तम सुगन्धित तैल माना गया है।[9]

उपर्युक्त वर्णित विधियों से इत्तर गन्धसार नामक ग्रन्थ में तेल के स्थान पर तिलों को सुवासित कर तदन्तर उनसे सुगन्धित तेल प्राप्त करने की विधि का वर्णन करता है।

सुगन्धित तैल बनाने के लिए धुले हुए तिल लेकर उन्हें कूट ले इनकी भूसी (छिलके) निकालकर तिलों को धूप में सुखायें। तत्पश्चात् चौड़े मुँह का पात्र लेकर इसमें सुगन्धित फूलों की एक तह बिछायें, इनके ऊपर एक अंगुल ऊँची तिलों की तह समान करके बिछा दें यह क्रम पात्र भरने तक जारी रखें तत्पश्चात् पात्र के मुख को ढककर रख दें। दूसरे दिन प्रभातकाल में पुराने फूलों को निकालकर ताजे फूलों को पुनः तिलों के साथ पूर्ववर्णित क्रम में रख दें। कई बार इसी क्रम के प्रयोग से तिलों में पुष्प की तीक्ष्ण गन्ध आ जायेगी तब तिल से सुगन्धित तेल प्राप्त किया जा सकता है।[10]

उदवर्तन (उबटन)

स्नेहावृत्ति के पश्चात् शरीर पर लगे तैल की चिकनाई को दूर करने के लिए विशेष प्रकार के कल्क प्रयोग में लाये जाते थे। कालिदास ने पार्वती के शरीर पर लगे तैल को लोध्र के कल्क (पिष्ट चूर्ण) से छुड़ाने का वर्णन किया है।[11] अष्टांग संग्रह[12] उदवर्तन के दो प्रकार बताये गये हैं–तैल मिश्रित स्निग्ध उदवर्तन को 'स्नेह कल्केन उद्घर्षणम' कहते हैं, जो उदवर्तन तैल रहित रूक्ष होता है उसे 'अस्नेहौषधचूर्णादिभिः घर्षणम्' कहते हैं।

सोमेश्वर[13] ने स्नेहावृत्ति के लिए सुगन्धित खली के प्रयोग का उल्लेख किया है। सुगन्धित खली बनाने के लिए चावल के मांड़ में गेहूँ के महीन आटे को पकाकर उसमें मैनफल की जड़, चन्दन और हल्दी चूर्ण को मिलाकर उत्तम खली बनाई जा सकती है।

सोमेश्वर[14] ने भिन्न–भिन्न औषधियों के फूल, पत्र, बीजा, काष्ठ, पुष्प और फलों के क्रमशः सम्मिश्रण द्वारा उदवर्तन बनाने का उल्लेख किया है। सर्वप्रथम कोष्ठ पटोलक, मुस्ता, ग्रन्थिवर्ण, निशाद्वय, पालक, तगर, जटामांसी, अजगंधा तथा पुष्कर की जड़ों को एकत्रित कर छाया में सुखा लें, तदन्तर नीम, राजवृक्ष, तुल और अर्जक के पत्तों को लाकर उनके साथ मिला देना चाहिए। इसके बाद इलायची, जाती, सर्षप, तिल, कुस्तुम्बरू, बाकुची, चकमर्द के साथ लौंग, पद्मक, लोध्र, श्रीखंड (चंदन), देवदारू, अगरू और सरल के काष्ठ का सम्मिश्रण करना चाहिए तत्पश्चात् नागकेसर, पुत्राग, कान्ता, केसर और चंपक के पुष्पों को मिलाकर दूध में पीसकर उसमें उदवर्तन बनाना चाहिए।

गन्धोदक

उबटन द्वारा शरीर के अतिरिक्त तैल को साफ करने के उपरान्त सुगन्धित जल द्वारा स्नान करने का उल्लेख अनेकशः हुआ है। गन्धोदक से स्नान शरीर के दुर्गन्ध को दूर करने के साथ ही नाड़ी तन्त्र और मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि उत्तम माना गया है।

गन्धोदक को बनाने के लिए विभिन्न वनस्पतियों के मूल, काष्ठ, पत्र, त्वक, पुष्प तथा फलों का प्रयोग किया जाता है। गन्धोदक बनाने के लिए सामान्य रूप से चुनी हुई जड़ी–बुटियों को महीने कपड़े में बांधकर इस पोटली को स्नान

के कुछ समय पूर्व जल में डाल दिया जाये या थोड़े से पानी कुछ देर उबालकर (लगभग पन्द्रह मिनट) उस क्वाथ को स्नान के जल में मिला दिया तो सुगन्धित जल तैयार हो जाता है।[15]

दिव्यावदान[16] में दूध, केसर, कर्पूर तथा अन्य सुगन्धित पदार्थों से युक्त जल से स्नान का उल्लेख है। अग्निपुराण[17] गन्धोदक निर्माण की दो विधियों को उल्लेख करता है। प्रथम विधि में–बिल्व, आम, जामुन, करवीर, कस्तुरी को जल में मिलाने की बात कही गयी है। अन्यत्र दालचीनी, नाड़ी, ग्रन्थिपर्ण, शैलेय, तगर, कान्ता कोल, कर्पूर, मासी, बोल और कुष्ठ को कस्तूरी के साथ मिलाकर जल को सुगन्धित करने की विधि बतायी गयी है।

केश प्रसाधन

आधुनिक युग के समान प्राचीन काल में शारीरिक स्वच्छता एवं सौन्दर्य के साथ केशों की स्वच्छता एवं सौन्दर्य का भी पूरा ध्यान रखा जाता था। केश प्रसाधन में बालों की स्वच्छता के लिए विभिन्न प्रकार के चूर्ण या शैम्पू, स्वास्थ्य के लिए विविध तेलों एवं सौन्दर्य की दृष्टि से पलित (श्वेत) केशों को काला करने के लिए विभिन्न केशरागों का प्रयोग किया जाता था।

शिरःस्नान चूर्ण या शैम्पू

बालों को धोने के लिए दालचीनी, कूठ, रेणुका, नलिका, स्पष्क्का, तगर, नेत्रवाला, नागकेसर, पत्र (गंधपत्र) को समान मात्रा में लेकर चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को सिर में लगाकर स्नान करने का वाराहमिहिर उल्लेख करते है।[18] इसके अतिरिक्त बाल धोने के लिए आमलक का भी प्रयोग किया जाता था।[19]

केशराग

आधुनिक युग के स्नान प्राचीन काल में भी श्वेत या पलित केशों को सौन्दर्य में बाधक माना गया है। अतः सौन्दर्य की अभिवृद्धि के लिए तत्कालीन समय में भी प्रायः विभिन्न प्रकार के केशरागों का प्रयोग किया जाता था, जिनके उल्लेख साहित्य में अनेकशः प्राप्त होते हैं।

द्वितीय शती ई0 के ग्रन्थ नवनीतक[20] के दशम अध्याय में केशराग का विशद वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ में केशराग के ग्यारह योग बताये गये है। इन योगों में प्रयुक्त द्रव्यों में अधिकांश ऐसे हैं जिनका उल्लेख वाग्भट के अष्टांग हृदय में मिलता हैं यथा–तिल–तैल, रोचना (गोरोचन), काकमाची नीली, पिप्पली, अभया (हरीतिकी), आमलक, अलंवुष, तुत्थ, मुस्ता, कासीस, आयोरज, दन्ती (जमालगोटा), भृंगराज, विभीतक, पयस (दूध,) मथुक (यष्टि मधु), रामतरूणी, शाबरक, कार्ष्णायस (कृष्णअयस), सर्पि (घृत), त्रिफला, नीलोत्पल, पिडारक, अंजन, पिप्पली मूल, सहचर पत्र, योकोरंटा, काला जंबू, कषाय, कुकुभ फल, काश्मर्च, आम्रफल–मध्य, असनफूल, विषग्रन्थि, लोहचूर्ण, कण्टकारी सारिका, मंदयंती और सुक्त। कुछ द्रव्य ऐसे भी है, जिनका उल्लेख अष्टांग हृदय में नहीं है। जैसे–कूर्मपित्त, सहदेव।

नवनीत के अनुसार एक प्रस्थ भृंगराज का रस दूध और एक फल मधुक को एक कडुवे तेल में पकाने पर उत्तम केशराग बनता हैं।

एक प्रस्थ आँवले के रस एवं घी में एक पल मधु डालकर पकाने पर निर्मित आलेप के प्रयोग से केश काले हो जायेंगे और यह नेत्रों के लिए भी उत्तम है।

वराहमिहिर ने केशराग निर्माण के योग का उल्लेख किया है। इसके निर्माण के लिए लौह पात्र का प्रयोग किया गया है। इसमें लौह चूर्ण, कोद्रव तण्डुल, अर्क या मदार के पत्ते और आँवले के प्रयोग का वर्णन किया गया है।

केशों को धोने एवं केशराग के प्रयोग के साथ ही विभिन्न प्रकार के तेलों का प्रयोग बालों में किया जाता था इनका वर्णन पूर्व में सुगन्धित तेल के अन्तर्गत किया गया है। वृहत्संहिता[21] में वर्णित है कि केशराग प्रयोग के उपरान्त बालों से लोहे और सिर्के के कारण जो गन्ध आती है उसे सुगन्धित जल, शैम्पू या चूर्ण और धूपों के द्वारा दूर करना चाहिए। बालों को धूप द्वारा सुवासित करने के लिए विशेष प्रकार के छिद्र युक्त पात्र में धूम्र रहित अंगारे रखकर उस पर कृष्णागरू चूर्ण या पतली शालाकायें डाल दी जाती थी। इस धूमयन्त्र पर अपने बालों को फैलाकर साद्यःस्नाता अपने बालों को सुवासित करती थी।[22]

औषधी विलयन (हर्बल बॉडी लोशन)

मानसोल्लास[23] में शरीर पर लगाने के लिए औषधीय विलयन का उल्लेख प्राप्त होता है। इसके प्रयोग से शरीर में स्फूर्ति का संचार होता है। इसे बनाने के लिए चौड़े मुँह के मर्तबान के चौथाई भाग में अजयवान, चमेलिया, पुदीना, नींबू, गंधवेणु, बाँस और रसभरी आदि की पत्तियों का पेस्ट डालकर उन पर निर्गन्ध मद्यसार (एल्कोहल) मर्तबान के मुँह तक भरकर मर्तबान के मुँह को कसकर बाँध दिया जाये दो सप्ताह तक उसे बीच–बीच में अच्छी तरह हिलाते रहें। तत्पश्चात् उसे मलमल के स्वच्छ कपड़े से छानकर शिशियों में रख बाडी लोशन की तरह प्रयोग किया जाता है।

अंगराग (आलेपन–विलेपन)

स्नान के पश्चात् प्रसाधन में अंगराग का महत्वपूर्ण स्थान था। हर्षचरित[24] इसका स्पष्ट उल्लेख करता है कि स्नान के पश्चात् राजा पूजन से निवृत्त हो विलेपन भूमि की ओर जाता था जहाँ वह अपने शरीर पर कस्तूरी, कर्पूर और केसर मिश्रित चन्दन का आलेप लगाता था। इस आलेप को विलेपन तथा अंगराग भी कहा गया है। अमरकोष[25] में कर्पूर, अगरू और कक्कोल की सुगन्धि को यक्षकर्दम कहा गया है। धनवन्तरी ने कुमकुम, कस्तूरी, कर्पूर, चन्दन और अगरू से निर्मित सुगन्धि को यक्षकर्दम नाम दिया है। लगभग 9वीं शती के बाद इसे ही चतुःसम सुगन्धि कहा जाने लगा।[26] मानसोल्लास यक्षकर्दभ को बसन्तऋतु में प्रयोग करने की सलाह देता है।

पटवास (टैल्कम पाउडर)

मुख एवं शरीर के विभिन्न भागों को सुवासित करने के लिए सुगन्धित चूर्ण (पटवास) का प्रयोग किया जाता था। इनमें मुख्य रूप से अंगरू, चंदन एवं तगर

के चूर्ण का उपयोग किया जाता था। बृहत्संहिता[27] के अनुसार तीन भाग दालचीनी, खस, गन्ध पत्र में आधा भाग इलायची मिलाकर इस चूर्ण का कस्तूरी या कर्पूर से बोध करे इस प्रकार जो चूर्ण निर्मित होता है वह उत्तम प्रकार का पटवास होता है। इनका प्रयोग वस्त्रों को सुवासित करने में भी होता था।

मुख प्रसाधन

कपोल परिकर्म

वात्स्यायन ने कपोल परिकर्म की गणना चौसठ कलाओं में की है तथा इसे विशेषकच्छेद्यम् संज्ञा से अभिहीत किया है कपोलों पर इस प्रकार के चित्रकर्म के पत्रभंगों के निर्माण में प्रायः चन्दन लेप और लोध्रराज का उपयोग किया जाता था, जो स्नान के समय एवं स्वेद से भी धुल जाते थे। कालिदास ने पार्वती के मुख पर उजले अगरू और लाल गोरोचन से की गयी पत्र रचना का वर्णन किया है। यहाँ उल्लेखनीय है कि यह पत्र रचना मात्र मुख पर ही नही अपितु शरीर के किसी भी भाग में की जा सकती थी।[28]

नेत्र प्रसाधन

नेत्र प्रसाधन के रूप में अंजन का प्रयोग बहुलता से किया जाता था। यह अंजन प्रसाधन मात्र न होकर नेत्र के स्वास्थ्य के लिए भी उत्तम माने गये है। आयुर्वेद में विभिन्न नेत्र रोगों में चिकित्सा के निमित्त विविध प्रकार के अंजनों का वर्णन किया गया है।[29] अत्रिदेव विद्यालंकार[30] ने आयुर्वेद प्रकाश के आधार पर पाँच प्रकार के अंजन बताये हैं यथा नीलांजन, स्त्रोतांजन, रसांजन, पुष्पांजन और सौवीराजन। इनमें स्त्रोतांजन को सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

ओष्ठराग

ओष्ठ पर लालिमा के लिए लाक्षा रस का प्रयोग किया जाता था जैन साहित्य में इसे ही नन्दी चूर्ण कहा गया है।[32] लाक्षा रस लगे होठों पर मधुच्छिष्ट या मोम का लेप किया जाता था।[33] निःसंदेह मोम का प्रयोग लाक्षारस को यथास्थान बनाये रखने के लिए किया जाता रहा होगा।

भाल–तिलक

तिलक प्रायः लाक्षारस, गोरोचन, कुमकुम, हरिताल, मनःशिला, अभ्रक, तीर्थमुद्रा, चंदन, केसर, अंजन, भस्म आदि से लगाया जाता था। अभ्रक के चूर्ण को मोम की सहायता से ललाट पर चिपकाया जाता था।[34]

हस्त व पाद प्रसाधन

पैरों को रंगने के लिए प्रायः लाक्षारस का प्रयोग किया जाता था इसके द्वारा हाथ की अंगुलियों के अग्रभाग को भी लालिमा प्रदान की जाती थी।[35] जो आज भी प्रचलन में है।

मुखवास

प्रसाधन के उपर्युक्त समस्त साधनों में मुखवास का प्रमुख स्थान था। इसके द्वारा प्रसाधन कर्म पूर्णता को प्राप्त करता था। मुखवास स्वास्थ्य के साथ ही मूख की

दुर्गन्ध दूर करने का प्रमुख साधन था। अग्निपुराण[36] मुखवास जनक द्रव्यों को ताम्बूल में मिलाकर एवं स्वतंत्र रूप से खाने का भी वर्णन करता है। इनके निर्माण में इलायची, कक्कोल, लवंग, जातीफल (जायफल), जाती पत्रिका (जावित्रि) आदि का प्रयोग किया जाता था। सुगन्धित वटिका में कर्पूर, कुमकुम, कक्कोल, लवंग, कस्तूरी खदिर आदि का प्रयोग किया जाता था। उपासकदशा[37] मुखवास बनाने के लिए इलायची, लवंग, कर्पूर, कक्कोल और जायफल का उल्लेख करता है।

सन्दर्भ

1. ई0मैके, चन्दुदड़ो एक्सकवेशन्स, न्यूहैवेन, 1943, पृ0 113–115, मार्शन जॉन–मोहनजोदड़ो एण्ड इट्स सिविलाइजेशन, खण्ड–2 लन्दन, 1931, पृ0 267, खण्ड–3 फलक 1331
2. मिश्र, जयशंकर प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास नई दिल्ली, 1992, पृ0 639
3. मोतीचन्द्र, सार्थवाह–प्राचीन भारत की पद्धति 1966, पृ0 126
4. चकलधर, एच0सी0 सोशल लाइफ इन एशियन्स इंडियाः स्टडीज इन वात्सायनास कामसूत्र, दिल्ली, 1976 पृ0 156
5. वृहत्संहिता, वाराहमिहिरकृत, सम्पा अच्युतानन्द झा, वाराणसी, 2007, पृ0 474
6. विद्यालंकार अत्रिदेव, प्राचीन भारत के प्रसाधन पृ0 157
7. वृहत्संहिता, पूर्वोक्त, पृ0 462
8. अग्निपुराणम्, उत्तर भाग, अनुवादक तारिणीश झा, इलाहाबाद, 1986, 224 / 31–32
9. आचार्य, भावना–प्राचीन भारत में रूप श्रृंगार, पष्0 202–203
10. सत्यप्रकाश, प्राचीन भारत में रसायन का विकास, वाराणसी। 1960, पृ0 804
11. कुमार संभव, 7 / 9
12. अष्टांगसंग्रह, व्याख्याकार डा0 रविदत्त त्रिपाठी, दिल्ली, 1992 पृ0 50–51
13. मानसोल्लास आफ किंग भूलोकमल्ल सोमेश्वर, Vol. I, सम्पादक श्री जे0 के0 गोंडेकर, बड़ौदा, 1967, 3 / 2 / 958–87
14. मानसोल्लास, पूर्वोक्त, 3 / 2 / 978–84
15. आचार्य भावना, पूर्वोक्त, पृ0 188
16. मोतीचन्द्र, कॉस्टयूम, टेक्सटाइल्स, कॉस्मेटिक एण्ड कॉयफर, पृ0 206
17. अग्निपुराण पूर्वोक्त, 221 / 27–29
18. वृहत्संहिता, पूर्वोक्त पृ0 468
19. अग्रवाल, बी0एस0 हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पटना, 1953
20. सतयप्रकाश, पूर्वोक्त, पृ0 824–26
21. वृहत्संहिता, पूर्वोक्त, पृ0
22. आचार्य, भावना–पूर्वोक्त, पृ0 195

23. जोशी, एम0एन0, आर्ट एण्ड साइन्स इन मानसोल्लास, दिल्ली, 2003, पृ0 168
24. कादम्बरी, बाणभट्टकृत, व्याख्याकार जगन्नाथ पाठक, वाराणसी। 1972, पृ0 34
25. अमरकोष, शास्त्री हरगोविन्द (सम्पादक), वाराणसी संवत् 2009, 2 / 16 / 133
26. अग्रवाल, बी0एस0, कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, बनारस, 1958, पृ0 30
27. वृहत्संहिता, पूर्वोक्त, पृ0 469
28. आचार्य, भावना–पूर्वोक्त, पृ0 209–10
29. सुश्रुत संहिता–महर्षि सुश्रुत कृत, भाग–3 डा0 अनन्तराम शर्मा (सम्पादक) वाराणसी, 2001, पृ0 71–89
30. विद्यालंकार, अत्रिदेव–प्राचीन भारत में प्रसाधन, पृ0 69–70
31. सुश्रुतसंहिता, पूर्वोक्त, 24 / 18 व मोतीचन्द्र, पूर्वोक्त, 1973 पृ0 286, 208
32. जैन, जगदीशचन्द्र–जैन आगम, साहित्य में भारतीय समाज, पृ0 154
33. चकलधर, एच0सी0, पूर्वोक्त, पृ0 156, कुमार संभव, 7 / 18
34. आचार्य भावना पूर्वोक्त, पृ0 211–212
35. मोतीचन्द्र, पूर्वोक्त, पृ0 192
36. अग्निपुराण, 233 / 32, 224 / 34–35, 38
37. उपासक दशा, पी0एल0 वैद्य (सम्पादक), भाग–1 पृ0 9